॥ अथ श्रीसाईसच्चरित ॥ अध्याय ८ ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः॥ श्रीसरस्वत्यै नमः॥ श्रीगुरुभ्यो नमः॥ श्रीकुलदेवतायै नमः॥ श्रीसीतारामचंद्राभ्यां नमः॥ श्रीसद्गुरुसाईनाथाय नमः॥ मागील अध्यायीं जाहलें कथन। कैसे साई हिंदू वा यवन। काय त्या शिरडीचें भाग्य गहन। जें निजस्थान बाबांचें॥१॥ कैसे बाबा आरंभीं पोर। पुढें जाहले वेडे फकीर। कैसी बनविली बाग सुंदर। मूळच्या उखर स्थळाची॥२॥ कैसा कालेंकरून पुढा। त्याचि जागेवर जाहला वाडा। धोती पोती खंडयोग गाढा। वर्णिला निधडा बाबांचा॥३॥ झिजवूनियां निजकाय। बाबांनीं साहिले कैसे अपाय। भक्तकैवारी साईराय। वर्णूं मी काय तयांतें॥४॥ आतां ऐका नरजन्माचें महिमान। साईंच्या भैक्ष्यवृत्तीचें वर्णन। बायजाबाईंचे संतसेवन। बाबांचें भोजनकौतुक॥५॥ तात्या बाबा म्हाळसापती। तिघे कैसे मशिदीं निजती। कैसे खुशालचंदाचे गृहा जाती। राहात्याप्रती समर्थ॥६॥ प्रत्यहीं उदय प्रत्यहीं अस्त। वर्षानुवर्षें जाहलीं फस्त। अर्धा जन्म निद्रितावस्थ। उरलाही स्वस्थ भोगवेना॥७॥ बाळपणीं क्रीडासक्त। तरुणपणीं तरुणीरक्त। वृद्धापकाळीं जराग्रस्त। सदैव त्रस्त व्याधींनीं॥८॥ जन्मासी येऊनि पुष्ट होणें। श्वासोच्छ्वास करीत राहणें। दीर्घायुष्यवरी वांचणें। हें काय केणें या जन्मीं॥९॥ परमात्मप्राप्ति हेचि साची। इतिकर्तव्यता नरजन्माची। नातरी श्वानसूकरादिकांची। जीविकाची काय उणी॥१०॥ श्वानेंही आपुलीं पोटें भरितीं। प्रजोत्पादन यथेष्ट करितीं। तेथें नरदेहाचीच काय

महती। साम्यस्थिति उभयतां जैं॥११॥ पिंडपोषण आणि मैथुन। हेंचि जरी नरदेहाचें साधन। हेंचि जरी या जन्माचें पर्यवसान। तरी तो नरजन्म निरर्थक॥१२॥ आहार-निद्रादि चतुष्टय। यांतचि होतां आयुष्यक्षय। मग श्वानां-मानवां भेद काय। करा निर्णय विवेकें॥१३॥ हीच जरी नरदेहसफलता। तरुजन्मीं काय न्यूनता। [1]भस्त्राही करी श्वासोच्छ्वासता। शरीरपुष्टता श्वानांही॥१४॥ मनुष्यप्राणी मुक्त आहे। तो निर्भय तो स्वतंत्र पाहे। तो शाश्वत ही जाणीव राहे। सफलता हे जन्माची॥१५॥ आला कोठूनि आहे कोण। नरजन्माचें काय कारण। एथील बीज जाणे तो प्रवीण। त्यावीण शीण मग सारा॥१६॥ जैसी नंदादीपाची ज्योती। एकचि दिसे आदिअंतीं। परी वेगळी क्षणाक्षणाप्रती। तैशीच स्थिति देहाची॥१७॥ बाल्य-तारुण्य-वार्धक्यावस्था। या तों प्रकट जनां समस्तां। परी येती जाती [2]स्वभावता। कोणा न कळतां कदाही॥१८॥ दिसे तीच तत्क्षणीं नासे। अपरिमित तरी एकचि भासे। तैसाचि देह जो या क्षणीं असे। क्षणांतीं नसे पूर्वील॥१९॥ देह मळमूत्रांची न्हाणी। श्लेष्म-पूय-लाळींची घाणी। मरण ठेविलें क्षणोक्षणीं। कुलक्षणी मोठा हा॥२०॥ जें हें कृमिकीटकांचें घर। नाना रोगांचें आगर। [3]अश्वत्थ आणि क्षणभंगुर। तें हें शरीर मानवी॥२१॥ मांसशोणितस्नायूंचा गाडा। तो हा अस्थि-चर्मांचा सांगाडा। मूत्र-पुरीष दुर्गंधीचा राडा। जीवाचा खोडा प्रत्यक्ष॥२२॥ त्वचा मांस रुधिर स्नायू। मेद मज्जा अस्थि वायू। अमंगल अंगें उपस्थ पायू। ते अल्पायु हे काया॥२३॥ ऐसा अमंगल आणि नश्वर। नरदेह जरी क्षणभंगुर। तरी मंगलधाम श्रीपरमेश्वर। हातीं येणार एणेंचि॥२४॥ सदैव लागलें जन्म-

---

१. भाता २. स्वाभाविकपणे ३. क्षणभंगुर, उद्या नाही तो

मरण। कल्पनेचेंचि भय दारुण। नाहीं लागतां कानाला कान। प्राण हा निघून जाईल॥२५॥ कोण लक्षी दिवसराती। किती येती आणिक जाती। मार्कंडेयाच्या आयुष्यें जन्मती। तयांही कालगती चुकेना॥२६॥ ऐशिया क्षणभंगुर नरदेहीं। पुण्यश्लोक कथावार्ताही। गेला काळचि पडे संग्रहीं। तद्विरहित तो व्यर्थ॥२७॥ हीच जाणीव झालिया निश्चित। हेंचि जन्मा आल्याचें हित। परी हा विश्वास नाहीं पटत। अनुभवाव्यतिरिक्त कोणाही॥२८॥ परी यावया हा अनुभव। करूं लागे अभ्यास विभव। तरी शाश्वत सुखार्थी हा जीव। तेणें हें वैभव साधावें॥२९॥ दारा सुत वैभव वित्त। पृथ्वी समुद्रवलयांकित। ईश्वरकृपें इतुकेंही प्राप्त। तरी तो अतृप्त मानसीं॥३०॥ शाश्वत सुख आणि शांती। हेंच ध्येय ठेवूनि चित्तीं। भूतीं भगवंत हे एक उपास्ति। परमप्राप्तिदायक॥३१॥ त्वचा मांस रुधिर हाडां। जोडूनि केला हा देहसांगाडा। परमार्थाचा प्रत्यक्ष खोडा। ममत्व सोडा तयाचें॥३२॥ मानावा तो केवळ चाकर। नका बैसवूं त्या डोक्यावर। लाड न पुरवा निरंतर। नरकद्वार करूं नका॥३३॥ निर्वाहापुरतें अन्न आच्छादन। तैसेंच तात्पुरतें लालन पालन। लावा आध्यात्मिक उन्नतीलागून। जन्ममरण चुकवावया॥३४॥ जन्ममरणादि अनर्थात्मक। प्रतिक्षण विनाशोन्मुख। कैसें क्षणिक याचें सुख। निरंतर असुख जो॥३५॥ जैसी विद्युल्लता पाहीं। आतां आहे आतां नाहीं। क्षणिक सागर-तरंगता ही। विचार कांहीं करावा॥३६॥ देहगेहापत्य स्त्री जन। हीं सर्व नाशिवंत जाणून। मातापित्यांसी खांदां वाहून। स्वयें जो आपण उमजे ना॥३७॥ मेल्यामागें खुशाल मरे। फिरे जन्म-मरणांचे फेरे। परी ते कोण्या गुणें आवरे। विचार न करी क्षणभरी॥३८॥ करितां नित्य कुटुंबाची भर। आयुष्य जातसे भराभर। काळ

आयुष्यगणनातत्पर। कर्तव्यविसर त्या नाहीं॥३९॥ भरतां अखेरची घडी। मग तो थांबेना एक [४]चिपडी। धीवर जैसा जाळें ओढी। मरणीं तडफडी जीव तैसा॥४०॥ महद्‌भाग्याचिया परवडी। वेंचूनियां पुण्यकोडी। लाधली नरदेहाची जोडी। घडीनें घडी साधावी॥४१॥ करूं जातां भगीरथ युक्ति। या नरदेहाची नाहीं प्राप्ति। केवळ अदृष्टें ये अवचट हातीं। व्यर्थचि मातींत मिळवा ना॥४२॥ पुढील जन्मीं करूं म्हणतां। एकदां हा हातींचा जातां। पुढें हाचि येईल ही निश्चितता। ऐसें मानिता तो मूर्ख॥४३॥ कितीएक पापी देहवंत। होऊनि शुक्र-बीजसमन्वित। योनिद्वारासी होती प्राप्त। शरीरग्रहणार्थ निजकर्में॥४४॥ कितीएक ते त्याहूनि अधम। असतां जंगमवर्गीं जन्म। मागुती स्थावरभाव परम। यथाकर्म प्राप्त त्यां॥४५॥ जेणें जैसें उपार्जिलें ज्ञान। जयाचें जैसें कर्मानुष्ठान। तदनुसार तया शरीरग्रहण। श्रुतिप्रमाण हा योग॥४६॥ [५]'यथाप्रज्ञं हि संभवा'। वदे श्रुतिमाय अतिकणवा। जैसा जयाचा विज्ञानठेवा। जननही जीवा तैसेंच॥४७॥ अतर्क्य ईश्वरी [६]विंदान। अशक्य तयाचें संपूर्ण ज्ञान। अंशमात्रें लाधे जरी कवण। एक तो धन्य नरदेह॥४८॥ परमभाग्यें हा नरजन्म। महत्पुण्यें ब्राह्मणवर्ण। ईशकृपें साईचे चरण। लाभ हा संपूर्ण अलभ्य॥४९॥ आहेत जरी नाना योनी। मानवचि श्रेष्ठ सर्वांहुनी। आलों कोठुनी निर्मिलें कोणी। विवेक-श्रेणी मानवीच॥५०॥ इतर योनी हें न जाणती। उपजती तैशा नाश पावती। भूत भावी वर्तमान गति। ईश्वरस्थिति नेणती॥५१॥ म्हणोनि हा नरदेह निर्मून। ईश्वर झाला आनंदसंपन्न। कीं विवेकवैराग्यातें वरून। नर मद्‌भजन करील॥५२॥ विनाशी नर करितां साधन। होईल

४. क्षण ५. स्वतःच्या ज्ञानाला अनुसरून जन्म मिळतो. ६. लीला

अविनाशी नारायण। नरदेहासम साधनसंपन्न। दुजा न आन ये सृष्टीं॥५३॥ गारुडी स्वयें मोठा चतुर। खेळ न करी अज्ञानियासमोर। जाणे कुशलतेचें वर्मसार। तो प्रेक्षकसंभार अपेक्षी॥५४॥ तैसाचि पशु-पक्षी-वृक्षसंभार। जीवजंतु निर्मूनि अपार। सखेदाश्चर्य परमेश्वर। लीलानि:सार गमली त्या॥५५॥ अफाट हा ब्रह्मांडविस्तार। चंद्र सूर्य तारा भार। निर्मित्याच्या कौतुकाचा विचार। लवभर कोणीही करीना॥५६॥ हा सर्व खेळ करण्याआंतु। माझा जगदीशाचा काय हेतू। ये अर्थीची निश्चयमातु। एकही जंतु जाणेना॥५७॥ माझी अतुल वैभवसमृद्धि। जाणील ऐसा कुशाग्रबुद्धि । प्राणी निर्मिला नाहीं तदवधि। विफल त्रिशुद्धि मम कार्य॥५८॥ ऐसें जाणूनि जगदीशें। निर्मिला प्राणी मानववेषें। कीं जो सारासार बुद्धिवशें। मज सामर्थ्यें जाणील॥५९॥ अगाध माझें वैभव। तैशीच माझी शक्ति अपूर्व। माझ्या मायेचा हा खेळ सर्व। आश्चर्यपूर्वक तो जाणे॥६०॥ तोचि करील ज्ञानसंपादन। मच्चिंतन आणि मदवलोकन। तोचि होईल आश्चर्यसंपन्न। होईल तैं पूर्ण खेळ माझा॥६१॥ प्रेक्षकांची जी आनंदसंपन्नता। तीचि मज माझे खेळाची सांङ्गता। पाहूनि माझी जगन्नियंतृता। नर कृतार्थता मानील॥६२॥ काम्यकर्में द्रव्योपार्जन। एतदर्थ न शरीरपोषण। यावज्जीव तत्त्वज्ञानसंपादन। हेंच जीवनसाफल्य॥६३॥ तत्त्व तेंचि जें अभेदज्ञान। तेंचि उपनिषद्ब्रह्मज्ञान। तेंचि परमात्मोपासन। तेंचि तो भगवान भक्तांचा॥६४॥ गुरु ब्रह्म नव्हेत दोन। झालें जया हें अभेद ज्ञान। हीच भक्ती घडतां जाण। मायातरण सुगम जें॥६५॥ जे श्रद्धावंत पुरुष योग्य। संपादिती ज्ञान वैराग्य। हें आत्मतत्त्वचि निजभोग्य। भक्त सभाग्य ते जाणा॥६६॥ स्वस्वरूपाचें जे अभान। तें अज्ञान निरसल्यावीण। स्वयें कृतार्थ

मानी जो आपण। प्रतिबंध विलक्षण हा एक।।६७।। ज्ञान आणि अज्ञान। दोनी हे विकार अविद्याजन्य। कांटियानें कांटा फेडून। तैसीं उडवून द्या दोनी।।६८।। ज्ञानानें दूर करा अज्ञान। ज्ञानाज्ञानातीत होऊन। निर्मळ स्वस्वरूपावस्थान। हें एक पर्यवसान नरजन्मा।।६९।। न करितां [7]स्नेहाची [8]रांगोळी। अज्ञानतमाची [9]काजळी। ''मी मम'' या वातीची होळी। ज्ञान न पाजळी निजप्रभा।।७०।। नरदेहगत जें जें कार्य। असो निवार्य वा अनिवार्य। हें तों सर्व बुद्धिकर्तव्य। निश्चयप्राय जाणावें।।७१।। नाहीं आपणा दुजें काम। स्वस्थ भोगावें ऐश्वर्य आराम। अथवा चिंतावें रामनाम। होऊं निष्काम निश्चिंत।।७२।। शरीरेंद्रिय-मन-बुद्धी। या तों सर्व आत्म्याच्या उपाधी। इहींचि आत्मा भोक्तृत्व आपादी। स्वयें अनादि अभोक्ता।।७३।। आत्म्याचें भोक्तृत्व औपाधिक। स्वयें अभोक्ता स्वाभाविक। शास्त्र-न्याय-अन्वय-व्यतिरेक। प्रमाण देखा ये अर्थीं।।७४।। हें एक जाणोनि निजवर्म। बुद्धीसी सोंपावें प्राप्तकर्म। तिचे हातीं मनाचे धर्म। स्वयें निष्कर्म वर्तावें।।७५।। स्वधर्माचें अनुष्ठान। सदैव आत्मानात्मचिंतन। हेंचि नरजन्माचें पर्यवसान। समाधान स्वरूपीं।।७६।। नाहीं नरदेहापरी आन। चारी पुरुषार्थ साधाया साधन। जो नर अभ्यासपरायण। तो नारायणपद पावे।।७७।। म्हणूनि झालें न जों शरीरपतन। आत्मज्ञानार्थ करा यत्न। नरजन्माचा एकही क्षण। उपेक्षून टाकूं नका।।७८।। समुद्रींचें क्षारोदक। मेघाहातीं पडतां देख। होतें जैसें गोड पीयुख। तें सुख जडतां गुरुपायीं।।७९।। ऐशिया नरदेहाची सद्गती। गुरुविना नकळे कवण्याप्रती। गुरूचि जेव्हां धरती हातीं। तैंचि उद्धरती जड जीव।।८०।। मंत्र तीर्थ देव द्विज। ज्योतिर्वेद आणि

---

७. विषयप्रीतिरूप तेलाची   ८. समूळ नाश   ९. वात जळल्यानंतर राखस्वरूप राहते ती

भेषज। तैसेचि सातवे गुरुराज। भावना काज यां अवघियां।।८१।। जयांच्या ठायीं जैशी भावना। सिद्धीही तैशीच त्याप्रमाणा। वेग जैसा अधिक उणा। सिद्धीही जाणा तैशीच।।८२।। बद्धास करिती मुमुक्षू संत। मुमुक्षूचा करिती मुक्त। अव्यक्ताचे होऊनि व्यक्त। परोपकारार्थ हें करिती।।८३।। कार्य नव्हे जें व्याख्यानें पुराणें। सुकर होई तें सत्पुरुषाचरणें। तयाचें हालणे चालणें। उपदेशणें निःशब्द।।८४।। क्षमा शांती निःसंगता। भूतदया परोपकारता। इंद्रियनिग्रह निरहंकारता। यांचा आचरता दुर्लभ।।८५।। जें न लाभे पढतां ग्रंथ। सुलभ तें पहातां एक क्रियावंत। करी जें न तारांगण अनंत। संपादी भास्वत एकला।।८६।। तैसेचि हे उदार संत। सहज क्रिया त्यांच्या अनंत। करिती जीवांसी बंधमुक्त। सौख्य अत्यंत देतात।।८७।। यांतीलचि एक साईमहंत। ऐश्वर्यवंत श्रीमंत। परी फकिरासम आचरित। आत्मनिरत सर्वदा।।८८।। अनवच्छिन्न जयाची समता। मी माझें ही नाहीं वार्ता। जीवमात्रीं सदा सदयता। भूतीं भगवंतता मूर्तिमंत।।८९।। सौख्यें जयासी नाहीं हरिख। दुःखें जयासी नाहीं शोक। सरिसे जया रावरंक। हें काय कौतुक सामान्य।।९०।। जयाची भ्रूविक्षेपलहरी। क्षणांत रंकाचा राव करी। तो हा घेऊनि चौपालवी करीं। दारोदारीं हिंडतसे।।९१।। धन्य ते जन जयांचे द्वारीं। बाबा होऊनि भिक्षेकरी। ‘‘पोरी आण गे चतकुर भाकरी’’। म्हणूनि पसरी निजकर।।९२।। घेई टमरेल एके करीं। दुजिया हातीं चौपदरी। स्वयें फिरे दारोदारीं। नियमित घरीं प्रतिदिनीं।।९३।। भाजी सांबारें दूध ताक। पदार्थ तितुके सकळीक। टमरेलांत ओतिती लोक। पहा हें कवतीक खाण्याचें।।९४।। शिजला भात अथवा भाकरी। घ्यावया पसरली चौपदरी। पातळ पदार्थ मग कैसीही परी। टमरेलाभीतरीं रिचविती।।९५।। पदार्था-पदार्थाची

घ्यावया चवी। लालसा कोठूनि व्हावी। रसासक्ती जिव्हे न ठावी। जीवीं उठावीं कैसेनी ॥९६॥ झोळींत पडलें जें यदृच्छेनें। तृप्त असावें तयाच्याच सेवनें। रुचकर कीं बेचव हें नेणे। चवीचि रसने नाहीं कीं ॥९७॥ प्रहर दिवसा वस्तीलागुनी। भिक्षा मागत प्रतिदिनीं। तेणें उदरपूर्ति करुनी। समाधानी वर्तत ॥९८॥ भिक्षा तरी काय नियमित। इच्छेस येईल तेव्हां मागत। कधीं बारा वेळ एका दिवसांत। भिक्षेस जात गांवांत ॥९९॥ एणेंपरी जें अन्न आणीत। मशिदींतील कुंडींत ठेवीत। कावळे कुत्रे त्यांतचि खात। कधीं न हांकीत तयांना ॥१००॥ मशीद-आंगण झाडणारी। त्यांतूनि दहाबारा भाकरी। घेऊनि जाई आपुले घरीं। कोणी न वारी तिजलागीं ॥१०१॥ कुत्र्यां मांजरां हडहड करणें। स्वप्नांतही जो कदा नेणे। तो काय गरीब दुबळ्यां नको म्हणे। धन्य जिणें तयांचें ॥१०२॥ आरंभीं हा वेडा फकीर। येचि नामें जनां महशूर। तुकडे मागूनि भरी जो उदर। कैंचा बडिवार तयाचा ॥१०३॥ फकीर परी हाताचा सढळ। निरपेक्ष आणि स्नेहाळ। बाह्य चंचल अंतरीं अचळ। कळा अकळ तयाची ॥१०४॥ ऐसियाही त्या कुग्रामांत। जात्या अतीव दयावंत। होते कांहीं भाग्यवंत। ते त्या महंत मानीत ॥१०५॥ तात्या कोते यांची आई। नांव जियेचें बायजाबाई। पाटींत भाकऱ्या घेऊनि डोईं। रानांत जाई दुपारा ॥१०६॥ कोस कोस रान धुंडावें। दाट झाड झुडूप तुडवावें। वेड्या फकिरास या हुडकावें। पायां पडावें तयाच्या ॥१०७॥ काय तिच्या त्या सत्त्वाची थोरी। ओली कोरडी भाजी भाकरी। रानीं वनीं दुपारीं तिपारीं। भरवी न्याहारी बाबांतें ॥१०८॥ ऐसें तिचें तपाचरण। बाबाही न विसरले आमरण। केलें तिच्या पुत्राचें

कल्याण। पूर्ण स्मरणपूर्वक॥१०९॥ उभयतां त्या स्त्रीपुरुषांचा। फकिरापायीं दृढभाव साचा। फकीरचि देव त्या उभयतांचा। भावार्थियाचाच देव कीं॥११०॥ फकीरानें ध्यानस्थ असावें। बायजाबाईनें पान मांडावें। पाटींतील अन्न वाढावें। खाववावें प्रयत्नें॥१११॥ 'फकीरी अव्वल बादशाही। फकीरी ही चिरंतन राही। अमिरी क्षणभंगुर पाहीं।' सदा बाबांनीं म्हणावें॥११२॥ पुढें बाबांनीं रान त्यागिलें। गांवांत येऊनि राहूं लागले। मशिदींत अन्न खाऊं आदरिलें। कष्ट चुकविले आईचे॥११३॥ ऐसा हा नेम तेव्हांपासुनी। जैसा चालविला त्या उभयतांनीं। तैसाचि तो तयांचे मागुनी। तात्यांनींही चालविला॥११४॥ धन्य धन्य ते संत सदैव। जयांचे हृदयीं वासुदेव। धन्य तया भक्तांचें सुदैव। समागमवैभव ज्यां त्यांचें॥११५॥ तात्या महाभाग्यवान। म्हाळसापतींचेही पुण्य गहन। बाबांचे समागमाचा मान। समसमान भोगीत॥११६॥ तात्या आणि म्हाळसापती। मशिदींतचि शयन करिती। बाबांचीही अनुपम प्रीती। दोघांवरती सारखी॥११७॥ पूर्वपश्चिमे उत्तरेस। डोया तिघांच्या तीन दिशांस। पाय परस्परांचे पायांस। मध्यबिंदूस भिडविती॥११८॥ ताणूनि ऐशिया पथाऱ्या। गोष्टी वार्ता चालती साऱ्या। एकास येतां निद्रेच्या लकेऱ्या। तयास दुसऱ्यानें जागवावें॥११९॥ तात्या घोरूं लागतां। उठावें बाबांनीं अवचितां। करोनि तयांसी उलथापालथा। दाबावा माथा तयांचा॥१२०॥ घेऊनि समवेत म्हाळसापती। बिलगती दोघे तात्यांप्रती। आवळूनि धरिती पाय दाबिती। पाठही रगडिती तयांची॥१२१॥ ऐशीं सबंध चवदा सालें। बाबांसवें तात्या मशिदींत निजले। काय

भाग्याचे ते दिवस गेले। स्मरणीं राहिले अखंड॥१२२॥ घरीं ठेवूनियां मायबापें। बाबांच्या आवडीं मशिदीं झोंपे। प्रेम तें मापावें कवण्या मापें। मोल या कृपेचें कोण करी॥१२३॥ पुढें वडील पंचत्व पावले। तात्या घर-संसारांत पडले। झाले घरधनी स्वयें दादुले। निजूं लागले निजगृहीं॥१२४॥ असो ऐसा निष्ठावंत भाव। तयासीचि साईचा अनुभव। अनाहूत उभा स्वयमेव। भक्त नवलाव पाहूं ये॥१२५॥ तैसेचि राहात्यांत एक गृहस्थ। खुशालचंद नामें विख्यात। होते बाबांचे भक्त धनवंत। नगरशेट गांवींचे॥१२६॥ प्रसिद्ध पाटील गणपत कोते। जैसे बाबांचे फार आवडते। चुलते खुशालचंदांचे होते। तैसेचि बाबांतें प्रिय बहु॥१२७॥ जरी जातीचे मारवाडी। बाबांलागीं मोठी आवडी। परस्परांच्या घडोघडी। भेटी सुखपरवडी ते घेत॥१२८॥ हरिच्छेनें कांहीं कालें। वडील शेठजी पंचत्व पावले। तरीही न बाबा विसरले। प्रेम पहिलें दुणावलें॥१२९॥ पुढेंही खुशालचंदांवरती। वाढत गेली बाबांची प्रीति। आदेहान्त दिवसराती। कल्याणा जागती तयांचे॥१३०॥ कधीं गोरथीं किंवा हयरथीं। सवें घेऊनि प्रेमाचे सांगाती। तेथूनि दीड मैलावरती। राहात्याप्रती जात बाबा॥१३१॥ ग्रामस्थ लोक सामोरे येत। ताशे वाजंत्रीं सवें घेत। बाबांस गांवाचे वेशीवर भेटत। लोटांगणीं येत प्रेमानें॥१३२॥ मग तेथूनि गांवाआंत। बाबांस समारंभें नेत। अति प्रेमें वाजत गाजत। आनंदभरित मानसें॥१३३॥ खुशालचंद आपले सदनीं। बाबांस मग जात घेऊनी। तेथें अल्पाहार करवुनी। सुखासनीं बैसवीत॥१३४॥ मग त्या जुन्या पुराण्या वार्ता। आठवूनि कथिती उभयतां। परस्परांच्या आनंद

चित्ता। कोणास वर्णितां येईल तो॥१३५॥ एणेंप्रमाणें आनंद-विहार। पूर्ण होतां फळाहार। बाबा मग [10]स्वानंदनिर्भर। सहपरिवार परतती॥१३६॥ एकीकडे हें राहातें गांव। दुसरीकडे तें निमगांव। या दोहोंच्या मध्यें ठाव। शिरडी गांव वस्तीचा॥१३७॥ जरी या मध्यबिंदूपासून। या दोन गांवांबाहेर प्रयाण। स्थूळ देहें केलें न आनिर्वाण। तरी तयां जाण सर्वत्र॥१३८॥ नाहीं इतर कोठें प्रयाण। नाहीं अग्निरथाचें दर्शन। तरी त्या रथाचें गमनागमन। वेळ प्रमाण त्यां ठावें॥१३९॥ साधावया गाडीची वेळ। भक्तांनीं करावी तयारी प्रबळ। आज्ञा मागूं जातां जवळ। म्हणावें उतावीळ कां झालां॥१४०॥ बाबा न करितां आतां तांतडी। चुकेल माझी मुंबईची गाडी। नोकरीवरी येईल धाडी। साहेब काढील मजला कीं॥१४१॥ साहेब येथें नाहीं दुसरा। कशास व्हावी इतुकी त्वरा। जा खा भाकर तुकडा जरा। जाईं दुपारा जेवुनी॥१४२॥ ऐशी कोणाची आहे प्राज्ञा। कीं त्या वाणीची करील अवज्ञा। लहाना थोरा शहाण्या सुज्ञा। अनुभवविज्ञान सकळां हें॥१४३॥ ज्यानें ज्यानें आज्ञा मानिली। गाडी तयाची कधीं न चुकली। परी जयानें ती अवमानिली। प्रचीती घेतली रोकडी॥१४४॥

---

१०. यासंबंधी रा. हरी सीताराम दीक्षित यांना आलेला एक अनुभव - एके दिवशी दोनप्रहरी मला महाराज म्हणाले, ‘‘खुशालभाऊ पुष्कळ दिवसांत आले नाहीत. तू टांगा घेऊन राहात्यास जा व त्यांना घेऊन ये. त्यांना म्हणावे, तुम्हाला बाबांनी बोलाविले आहे.’’ त्याप्रमाणे मी टांगा घेऊन राहात्यास गेलो. खुशालभाऊंची भेट झाली. ते म्हणाले, ‘‘मी दुपारी जेवून निजलो होतो. माझा डोळा लागला तोच महाराज स्वप्नात आले व मला म्हणाले, ‘‘शिर्डीस चल.’’ त्याप्रमाणे मला येण्याची उत्कट इच्छा झाली. पण आज माझे घोडे येथे नाहीत म्हणून मला येता येत नाही. म्हणूनच मी माझ्या मुलाला आत्ताच शिर्डीस पाठविले आहे.’’ त्यावर मी म्हटले, ‘‘म्हणूनच महाराजांनी मला टांगा घेऊन पाठविले आहे. आपण येत असाल तर माझा टांगा तयार आहे.’’ त्यावर ते मोठ्या आनंदाने माझ्याबरोबर आले.

एकामागून एक अभिनव। संख्याविरहित ऐसे अनुभव। अनेकांचे अनेक अपूर्व। संक्षेपपूर्वक सांगेन॥१४५॥ हेमाड साईपदीं शरण। पुढील अध्यायीं हेंचि निरूपण। भक्त परततां गांवालागून। बाबांचें आज्ञापन हों लागे॥१४६॥ आज्ञा होई तो तो जाई। आज्ञा नाहीं तो तो राही। अवमानितां पडे अपायीं। पुढील अध्यायीं दिग्दर्शन॥१४७॥ तैसेंचि मधुकरी वृत्तीचें धारण। साईस किमर्थ भिक्षान्नसेवन। पंचसूनादि पातकक्षालन। कथानिरूपण पुढारा॥१४८॥ म्हणूनि श्रोतयां चरणीं प्रार्थना। करितों आग्रहें क्षणक्षणा। कराया साईचरित्र-श्रवणा। निजकल्याणाकारणें॥१४९॥ स्वस्ति श्रीसंतसज्जनप्रेरिते। भक्तहेमाडपंतविरचिते। श्रीसाईसमर्थसच्चरिते। श्रीसाईसमर्थावतरणं* नाम अष्टमोऽध्यायः संपूर्णः॥

॥ श्रीसद्गुरुसाईनाथार्पणमस्तु॥ शुभं भवतु॥

*टीप : श्रीसाईनाथांच्या एका सद्भक्ताने सुचविले आहे की, 'श्रीसाईसमर्थावतरणं' हा चौथ्या अध्यायात येऊन गेला आहे व या अध्यायात 'नर-जन्माची महती, भिक्षान्न-सेवन, बायजाबाईची भक्ती व तात्या-म्हाळसापती शयनं' यांची वर्णने आहेत. त्याप्रमाणे वाचकांनी लक्षात घ्यावे.